वर्ष : 1, अंक : 2, जुलाई –सितम्बर, 2011

पारस–परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

स्वर्गीय पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

पारस-बेला न्यास

पारस-बेला न्यास

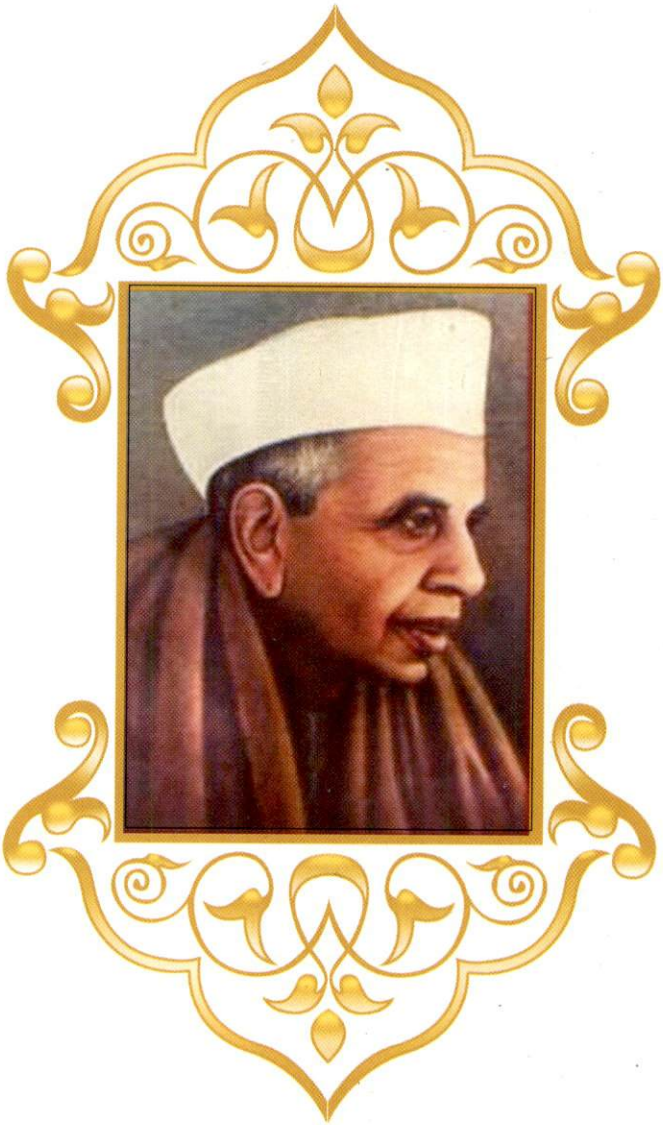

मैथिलीशरण गुप्त

(जन्म 3 अगस्त 1886 - निधन 1964)

निज गौरव का नित ज्ञान रहे
हम भी कुछ हैं यह ध्यान रहे।
सब जाय अभी पर मान रहे
मरणोत्तर गुंजित गान रहे।
कुछ हो न तजो निज साधन को
नर हो न निराश करो मन को।।

वर्ष : 1, अंक : 2, जुलाई – सितम्बर, 2011

पारस-परस

अनुक्रमणिका

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

संपादकीय 2
पाठकों की पाती 3
श्रद्धा सुमन
बाबू मेरे कहते रहे — *डॉ. अनिल कुमार पाठक* 4
कालजयी
स्वप्न का संसार रे... — *पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'* 5
छोड़ो लीक पुरानी — *श्रीकृष्ण सरल* 6
देखो, सोचो, समझो — *भगवती चरण वर्मा* 7
क्या विश्वास करें — *अम्बिका प्रसाद 'दिव्य'* 8
कॉटे मत बोओ — *रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'* 9
चार कौए उर्फ चार हौए — *भवानी प्रसाद मिश्र* 10
परिचय की वो गांठ — *त्रिलोचन* 11
गणपति बप्पा मोरिया — *काका हाथरसी* 12
विशेष
हिन्दी है भारत की बोली — *गोपाल सिंह नेपाली* 13
समय के सारथी
बेटियाँ — *बंशीधर अग्रवाल* 14
महँगाई को रोको — *सर्वेश चन्दौसनी* 15
संसद — *शिवकुमार 'बिलग्रामी'* 16,17
तुझे कुछ और भी दूँ — *रामवतार त्यागी* 18
हुआ क्या रात भर — *डा० मोहन अवस्थी* 19
चिठिया बांच रहा चदरमा — *दिवाकर वर्मा* 20
योगफल — *हरेराम समीप* 21
हाथ की ये लकीरें — *डा० विष्णु सक्सेना* 22
प्रवासी के बोल
नया उजाला देगी हिन्दी — *प्रो० आदेश हरिशंकर* 23
युद्ध के विरूद्ध हूँ मैं — *डा० अमिता तिवारी* 24
जिन्दगी छलने लगी — *रेखा राजवंशी* 25
पन्द्रह अगस्त — *अमिताभ मित्रा* 26
अर्थ शब्दों में नहीं तुम्हारे भीतर हैं — *मोहन राणा* 27
पासवर्ड — *गुलशन गंगाधर सिंह 'सुखलाल'* 28
एक जिन्दगी तीन किरदार — *डा० सुरेन्द्र भूटानी* 29
नारी स्वर
व्यर्थ नहीं हूँ मैं — *कविता किरण* 30
काल नही सूना हो जाए — *निर्मला जोशी* 31
राजकीय प्रवास — *अनामिका* 32
स्वाभिमानिनी — *अंजना संधीर* 33
नवांकुर
सत्यमेव जयते — *इंदिरा मोहन* 34
यमदूत — *नीरज त्रिपाठी* 35
सपने का घर — *विकासानन्द* 36
दो कविताएं — *ऋषभदेव शर्मा* 37
रजधानी की धज — *देवव्रत जोशी* 38
अश्क से भागी निगाहें — *डा० त्रिमोहन तरल* 39
जल दोहे — *इन्द्रप्रसाद 'अकेला'* 40

संपादक
डॉ. सुनील जोगी

कार्यकारी संपादक
शिवकुमार बिलग्रामी

संरक्षक
डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
श्री अभिमन्यु कुमार पाठक;
श्री अरुण कुमार पाठक;
श्री राजेश प्रकाश;
डॉ. अशोक मधुप

प्रवासी संपादकीय सलाहकार
डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल (नार्वे)
श्री ब्रह्म शर्मा (सिंगापुर)
श्री सी.एम. सरदार (मस्कट)

संपादकीय कार्यालय
आर–101 ए, गीता अपार्टमेन्ट
खिड़की एक्सटेन्शन, मालवीय नगर
नयी दिल्ली – 110017
दूरभाष – 9811005255

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
आप्शन प्रिन्टोफास्ट,
पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एरिया नई दिल्ली – 92

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा **प्रसून प्रतिष्ठान** के लिए **डॉ. अनिल कुमार पाठक** द्वारा **प्रकाश पैकेजर्स**, 257, गोलागंज लखनऊ मे मुद्रित एवं सी–49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड़, लखनऊ से प्रकाशित । संपादक – **डॉ. सुनील जोगी** ।

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं के रचयिताओं के विचार अपने हैं । विवादास्पद मामले लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे । संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक

संपादकीय

आधुनिक चिंतन में जहाँ एक ओर सारे मूल्यों का स्त्रोत और उपादान मनुष्य है वहीं दूसरी ओर मनुष्य ही मूल्यों के विघटन का कारण भी है । सदियों से निर्मित और विकसित मूल्य विघटित होते जा रहे हैं, और हमारी वर्तमान सभ्यता में चिंता का यह केन्द्रीय विषय है। ऐसा नहीं कि पूर्व में कभी संक्रमण या मूल्यहीनता की स्थिति नही आयी, पर पूर्वगामी संक्रमण अपनी प्रकृति में सुधारपरक थे, इसलिए उनसे उद्‌भूत परिवर्तन एक उन्नत समाज का आधार बने । पर अब स्थितियाँ एकदम उलट हैं, सामाजिक मूल्यों संबंधी मौलिक आधार ही उखड़ते जा रहे हैं । मूल्यों के विघटन की इस स्थिति को लाने मे विज्ञान और प्रविधि का बहुत बड़ा हाथ है। मनुष्य की मानसिकता अत्यधिक प्रयोगधर्मी हो गयी है। समाज ने हज़ारो वर्षों के अनुभवों के आधार पर लोकहित में जिन मूल्यों की प्राण–प्रतिष्ठा की अब वैज्ञानिक दृष्टि की प्रवंचना में मानव उन्ही मूल्यों का भंजन और अवमूल्यन करने पर तुला है। सहस्राब्दियों की अनुभूत, समग्र और सर्वहितकारी मंगल दृष्टि पर तत्क्षण जीवी वैज्ञानिक दृष्टि भारी पड़ रही है । यह कैसा आधुनिक चितंन है ?

विज्ञान किसी समाज को सुख–साधन तो उपलब्ध करा सकता है पर किसी समाज को एक समग्र हितकारी और कल्याणकारी दृष्टि उस समाज के काव्य योद्धा ही उसे दे पाते हैं ।

पारस–परस का यह अंक इन्ही काव्य योद्धाओं के चिंतन–सृजन का एक ऐसा पुष्प–गुच्छ है जिसमें तरह–तरह के रस और रंग–रूप वाली कविताओं का समावेश किया गया है। ये अपने पाठको में न केवल आनन्द उर्मियाँ उत्पन्न करेंगी अपितु उनमें सर्व हितकारी मंगल भाव भी जागृत करेंगी, जो कि काव्य का परमोद्‌देश्य है।

इस अंक में हमने पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की एक उत्कृष्ट रचना 'स्वप्न का संसार रे यह' को शामिल किया है । 17 जुलाई, स्वर्गीय पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की जन्म तिथि है इसलिए पत्रिका के इस अंक के मुख पृष्ठ पर उनका फोटो देकर उन्हे हम अपनी ओर से विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे है। जुलाई–सितम्बर के काल खण्ड में कुछ अन्य ख्यातिलब्ध कवियों की जन्मतिथि है, हम सृजन स्मरण स्वरूप उनके चित्र भी पत्रिका में प्रकाशित कर रहे हैं। कालजयी स्तम्भ में हमने भगवती चरण वर्मा की 'देखो, सोचो, समझो'; अम्बिका प्रसाद 'दिव्य' की 'क्या विश्वास करें' तथा रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की एक अत्यधिक प्रेरक कविता 'काँटे मत बोओ' को शामिल किया है । सदैव की भांति हास्य की छटा बरकरार रखने के लिए हमने भगवती प्रसाद मिश्र की कविता 'चार कौए उर्फ चार हौए' तथा काका हाथरसी की कविता 'गणपति बप्पा मोरिया' को शामिल कर पाठकों को गुदगुदाने की चेष्टा की है ।

हम सितम्बर में हिन्दी पखवाड़ा मनाते हैं । इसी बात को ध्यान में रखकर हमने गोपाल सिंह नेपाली की उत्कृष्ट रचना 'हिन्दी है भारत की बोली' को शामिल किया है। 'समय के सारथी' स्तम्भ के अंतर्गत हमने जाने माने गीतकार और शायर सर्वेश चन्दौसवी का एक सामयिक गीत 'महँगाई को रोको' शामिल किया है। शिवकुमार 'बिलग्रामी' की एक उत्कृष्ट रचना 'संसद' को भी इसमें जगह दी है। इसके अतिरिक्त विविध क्षेत्र और रूचियों की दूसरी उत्कृष्ट कविताओं को भी शामिल किया गया है।

आशा है पारस–परस के इस अंक में प्रकाशित सभी कविताएं आप को अच्छी लगेंगी और आप अपनी प्रतिक्रियाओं से हमारा उत्साहवर्धन करेंगे।

–डॉ0 सुनील जोगी
(संपादक)
मोबाः 09811005255
ई–मेलः kavisuniljogi@gmail.com

माननीय संपादक महोदय,

सबसे पहले, मैं आपको इस बात की बधाई देना चाहता हूं कि आपने पारस–पखान के नाम में परिवर्तन कर इसे पारस–परस कर दिया है। पारस–परस अधिक सुबोधगम्य और सुस्पष्ट अर्थ देने वाला नाम है। इस बार यह पत्रिका अपनी साज–सज्जा से लेकर विषयवस्तु तक, हर दृष्टि से परिवर्तित नज़र आयी। लगता है नाम के साथ–साथ इसने अपना चोला भी बदल लिया है। कविता के चयन की दृष्टि से इस बार 'कालजयी' स्तम्भ में प्रकाशित सभी रचनाए उत्कृष्ट कोटि की है। मुझे पत्रिक में किया गया यह बदलाव अत्यधिक सुखकर लगा । इसके लिए आपको एक बार फिर से धन्यवाद।

– जे. पी. तिवारी
तुलसीपुरम, लखनऊ

इस बार पत्रिका ने मुझे थोड़ा चकित किया। जैसे ही मुझे पत्रिका प्राप्त हुई मैनें सोचा कि पारस–पखान की तरह किसी ने पारस–परस के नाम से भी पत्रिका निकालनी शुरू कर दी है। लेकिन संपादक का नाम देखकर मैं भ्रम में पड़ गयी बाद में संपादकीय पढ़नें से ज्ञात हुआ कि पत्रिका का नाम बदल गया है। पारस–पखान ही पारस–परस के नाम प्रकाशित हुई है। बहरहाल आपको इस बदलाव के लिए मुबारकबाद। नये तेवर और नये कलेवर में यह पत्रिका आकर्षक लग रही है । इसके समय के सारथी 'स्तम्भ में आपने जो नवगीत नदी का बहना मुझ में हो प्रकाशित किया है वह मन को बहुत अधिक भाया। छोटा लेकिन बहुत ही प्यारा गीत है। इसके अतिरक्ति इसमें प्रकाशित अन्य कविताएं भी काफी अच्छी लगीं, विशेष रूप से अल्हड़ बीकानेरी की हास्य–व्यंग्य कविता–बस एक बार मुझको सरकार बनाने दो । आशा है भविष्य में भी आप इसी मनोयोग से इस पत्रिका को बेहतर बनाने की दिशा में काम करते रहेंगे।

– मालती सिन्हा
कविनगर, गाजियाबाद

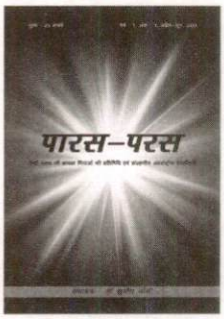

पारस–परस का प्रथम अंक काफी रोचक लगा। इसके संपादकीय से लेकर कविताओं का चयन, कविताओं की भिन्नता, अलग–अलग तेवर वाली कविताएं सब कुछ अच्छा लगा । पारस–पखान में आप कविताओं के नीचे शेर देते थे, लेकिन इस बार दोहों का प्रयोग कर एक सुखद परिवर्तन किया, यह अच्छा लगा । इसके कालजयी कालम में 'किसी के मधुर मिलन की बात' कविता मन को छू गयी।'प्रसून' जी की यह कविता शिल्प की दृष्टि से भी बहुत अच्छी है। इसके अलावा 'एक बार फिर पाठशाला जाना है' कविता बहुत अच्छी लगी। इससे मेरे बचपन की यादें ताज़ा हो गयीं।

– हीरा लाल
आरामबाग, दिल्ली

इस बार तो आपने पत्रिका में आमूलचूल परिवर्तन कर डाला है। कालजयी कालम से प्रकाशित कविताएं बहुत अच्छी लगीं । राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की कविता– 'जनतंत्र का जन्म' और 'हरिऔध' की कविता 'कर्मवीर' कई बरसों बाद पढ़ी तो किशोरावस्था के दिन याद आ गये। स्कूल के दिनों में कभी इन कविताओं का पढ़ा था । बालस्वरूप राही की कविता 'पलकें बिछाए तो नहीं बैठी' मुझे अत्यधिक अच्छी लगी। नवांकुर में प्रकाशित कुछ कविताएं तो बहुत ही अच्छी है । वेद प्रकाश यजुर्वेदी की कविता 'आस्था का सुमन' तथा शैलेश शुभिशाम की कविता 'हार–जीत ' अच्छी और स्तरीय हैं। 'इस सदी का बच्चा' कविता भी शिल्प और कलेवर की दृष्टि से अलग और मर्मस्पर्शी है। कहीं न कहीं मन को छूती है। अपेक्षा रखता हूं कि भविष्य मे भी इसी तरह की बेहतीन कविताएं प्रकाशित करते रहेंगें ।

– कौशलैन्द्र सिहं
हरदोई (उ0 प्र0)

बाबू मेरे कहते रहे

– डा0 अनिल कुमार पाठक

लाख कोशिश कर ले कोई,
झूठ सच होता नहीं ।
सच तो सदा सच ही रहेगा
निज सत्व सच खोता नहीं ।
वे पक्षधर बन सत्य के,
एकला चलते रहे ।
साथ सच का दो सदा
बाबू मेरे कहते रहे ।।1।।

बादलों की कालिमा, अस्तित्व
सूरज का मिटा सकती नहीं ।
आँधियाँ गिरिराज का
मस्तक झुका सकती नहीं ।
ले पताका सत्य की
निर्भीक वे चलते रहे ।
साथ सच का .... ।।2।।

वे गिरे, गिरकर उठे,
पर कभी भी ना झुके ।
कितनी बाधा–विघ्न आये
पर कभी भी ना रुके ।
अपराजेय योद्धा की तरह
हो निडर लड़ते रहे ।
साथ सच का ..... ।।3।।

सच कभी छोड़ा नहीं,
चाहे अकेले हो गये ।
सच के खातिर राह में,
अनचाहे झमेले हो गये ।
निष्काम योगी जैसे फिर भी,
हर पल सदा हँसते रहे ।
साथ सच का ..... ।।4।।

स्वप्न का संसार रे यह

– पं0 पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

स्वप्न का संसार रे यह ।
भावना को चूर करते,
कल्पना से दूर रहते,
एक जीवन के जलन का,
बन गया आधार रे यह ।
स्वप्न का संसार रे यह ।

जलधि से तो ज्वार लेकर,
स्वयं बनकर एक विषधर,
भर–रहा जीवन–कलश में,
विकल हाहाकार रे यह ।
स्वप्न का संसार रे यह ।

विफल–प्रेमी की कथा है,
या विकल उर की व्यथा है,
अश्रुओं की बाढ़ से रंग,
या करुण इतिहास रे यह ।
स्वप्न का संसार रे यह ।
पंथ पर कांटे बिछाकर,
चरण में बेड़ी पिन्हाकर,
बन गया है सब तरह से,
आज जीवन भार रे यह ।
स्वप्न का संसार रे यह ।

भावना साकार होती,
कल्पना जो रंग लाती,
और जीवन की व्यथायें
एक मधुरिम गीत गाती ।
कौन कहता फिर इसी को,
नील सागर ज्वार रे यह ।
स्वप्न का संसार रे यह ।

छोड़ो लीक पुरानी

– श्रीकृष्ण सरल

छोड़ो लीक पुरानी छोड़ो
युग को नई दिशा में मोड़ो
छोड़ो लीक पुरानी छोड़ो

प्रेरक बने अतीत तुम्हारा
नए क्षितिज की ओर चरण हो,
नए लक्ष्य की ओर तुम्हारे
उन्मुख जीवन और मरण हो
रखे बाँध कर जो जीवन को
ऐसे हर बंधन को तोड़ो
छोड़ो लीक पुरानी छोड़ो ।

बीत गया सो बीत गया वह
तुमको वर्तमान गढ़ना है
नया ज्ञान उपलब्ध जिधर हो
तुमको उसी ओर बढ़ना है
तुम जीवन के हर अनुभव से
जितना संभव ज्ञान निचोड़ो
छोड़ो, लीक पुरानी छोड़ो ।

पास तुम्हारे अपनी संस्कृति
लक्ष्य, नया विज्ञान तुम्हारा
नया सृजन इस महादेश का
अब यह हो अभियान तुम्हारा
करने पूर्ण नए लक्ष्यों को
सागर लांघों, पर्वत फोड़ो
छोड़ो, लीक पुरानी छोड़ो ।

ज्ञान तर्क सम्मत शुभ होता
नहीं अंधविश्वास सुखद है,
ग्रहण करो सभी ज्ञान तुम
जो हितकर, जो तुम्हे सुखद है
ज्ञान श्रेष्ठ संपत्ति सभी की
जितना बने, ज्ञान धन जोड़ो
छोड़ो लीक पुरानी छोड़ो ।

देखो, सोचो, समझो

– भगवतीचरण वर्मा

देखो, सोचो, समझो, सुनो गुनो औ' जानो
इसको उसको सम्भव हो निज को पहचानो
लेकिन अपना चेहरा जैसा है रहने दो,
जीवन की धारा में अपने को बहने दो

तुम जो कुछ हो वही रहोगे, मेरी मानो ।

वैसे तुम चेतन हो तुम प्रबुद्ध ज्ञानी हो
तुम समर्थ, तुम कर्ता, अतिशय अभिमानी हो
लेकिन अचरज इतना, तुम कितने भोले हो
ऊपर से ठोस दिखो, अन्दर से पोले हो

बन कर मिट जाने की तुम एक कहानी हो ।

पल में रो देते हो, पल में हँस पड़ते हो,
अपने में रमकर तुम अपने से लड़ते हो
पर यह सब तुम करते इस पर मुझको शक है
दर्शन मीमांसा यह फुरसत की बकझक है,

जमने की कोशिश में तुम रोज उखड़ते हो ।

थोड़ी सी घुटन और थोड़ी रंगीनी में,
चुटकी भर मिरचे में, मुट्ठी पर चीनी में,
जिन्दगी तुम्हारी सीमित है, इतना सच है
इससे जो कुछ ज्यादा, वह सब तो लालच है

दोस्त उम्र कटने दो इस तमाशबीनी में ।

धोखा है प्रेम–बैर, इसको तुम मत ठानो
कडुआ या मीठा रस तो है, छक कर छानो
चलने का अन्त नहीं, दिशा–ज्ञान कच्चा है
भ्रमने का मारग ही सीधा है, सच्चा है

जब–जब थक कर उलझो तब–तब लम्बी तानो ।

क्या विश्वास करें

– अम्बिका प्रसाद 'दिव्य'

जो है प्राण, वही जीवन में,
बन जाता है वाण कभी ।

जीवन की है जटिल समस्या,
जिससे प्रेम किया जाता है,
दो वस्त्रों–सा, दो देहों को,
जिसमें साथ सिया जाता है,
बन जाता है वही पृथक हो,
दुखदायी पाषाण कभी ।

आँखों में जो खिलतीं आकर,
मंजु मोद की मदरिल कलियाँ,
वही आँसुओं से हैं बहती,
बनकर कभी पहाड़ी नदियाँ,
बनता सुख ही दुख है जिसका
किया स्वयं निर्माण कभी ।

क्या विश्वास करें दुनिया का,
जो है ऐसी करवट लेती,
जो दिखता है यहाँ सत्य–सा,
कर सपने में परिणत देती,
सपने–सा ही अपना होना,
दिखता यहाँ प्रयाण कभी ।

किससे मिले यहाँ जब मिलकर,
पीर बिछुड़ने की आ रोती,
आँखों से जब झरे यहाँ पर,
झरे आँसुओं के ही मोती,
हँसी रुलाने को ही आई,
कर न सकी कल्याण कभी ।

सागर जैसी लहरें लेती,
जहाँ ठोस भी निर्दय घरिणी,
डगमग ही रहती है जब तक
पार न लगती जीवन तरिणी,
जहाँ प्राण ही वाण चलावें
संभव क्या निर्वाण कभी ।

काँटे मत बोओ

– रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

यदि फूल नहीं बो सकते तो, काँटे कम से कम मत बोओ ।

है अगम चेतना की घाटी, कमजोर बड़ा मानव का मन,
ममता की शीतल छाया में, होता कटुता का स्वयं शमन ।
ज्वालाएँ जब घुल जाती हैं, खुल–खुल जाते हैं मुँदे नयन,
होकर निर्मलता में प्रशांत बहता प्राणों का क्षुब्ध पवन ।

संकट में यदि मुस्का न सको, भय से कातर हो मत रोओ ।
यदि फूल नहीं बो सकते तो, काँटे कम से कम मत बोओ ।

हर सपने पर विश्वास करो, लो लगा चाँदनी का चंदन
मत याद करो मत सोचो ज्वाला में कैसे बीता जीवन ।
इस दुनिया की है रीत यही, सहता है तन बहता है मन
सुख की अभिमानी मदिरा में, जो जाग सका वह है चेतन ।

इसमें तुम जाग नहीं सकते, तो सेज बिछाकर मत सोओ ।
यदि फूल नहीं बो सकते तो, काँटे कम से कम मत बोओ ।

पग–पग पर शोर मचाने से मन में संकल्प नहीं जगता,
अनसुना अचीन्हा करने से, संकट का वेग नहीं थमता ।
संशय के सूक्ष्म कुहासों में, विश्वास नहीं क्षण भर रमता,
बादल के घेरों में भी तो, जयघोष न मारुत का थमता ।

यदि बढ़ न सको विश्वासों पर, साँसो के मुर्दे मत ढोओ ।
यदि फूल नहीं बो सकते तो, काँटे कम से कम मत बोओ ।

सिमट गया है सब कुछ ऐसे
टूटे तरु की छाया जैसे
भूल–भुलैया लेकर आये
शुभचिंतक हैं कैसे–कैसे

अभिज्ञान

चार कौए उर्फ चार हौए

– भवानी प्रसाद मिश्र

बहुत नहीं थे सिर्फ चार कौए थे काले,
उन्होंने यह तय किया कि सारे उड़ने वाले,
उनके ढंग से उड़ें, रुकें, खाएँ और गाएँ,
वे जिसको त्योहार कहें सब उसे मनाएँ ।

कभी –कभी जादू हो जाता है दुनिया में,
दुनिया–भर के गुण दिखते हैं औगुनिया में,
ये औगुनिए चार बड़े सरताज हो गए,
इनके नौकर चील, गरुड़ और बाज हो गए

हंस मोर चातक गौरैये किस गिनती में,
हाथ बाँधकर खड़े हो गए सब विनती में,
हुक्म हुआ, चातक पंछी रट नहीं लगाएँ,
पिऊ–पिऊ को छोड़ें कौए–कौए गाएँ ।

बीस तरह के काम दे दिए गौरैयों को,
खाना–पीना मौज उड़ाना छुटभैयों को,
कौओं की ऐसी बन आयी पाँचों घी में,
बड़े–बड़े मनसूबे आये उनके जी में।

उड़ने तक के नियम बदल कर ऐसे ढाले,
उड़ने वाले सिर्फ रह गए बैठे ठाले,
आगे क्या कुछ हुआ सुनाना बहुत कठिन है,
यह दिन कवि का नहीं चार कौओं का दिन है।

उत्सुकता जग जाए तो मेरे घर आ जाना
लंबा किस्सा थोड़े में किस तरह सुनाना !

परिचय की वो गाँठ

– त्रिलोचन

यों ही कुछ
मुस्काकर तुमने परिचय की वो गाँठ लगा दी !

था पथ पर मैं
भूला–भूला
फूल उपेक्षित कोई फूला
जाने कौन
लहर थी उस दिन
तुमने अपनी याद जगा दी ।
परिचय की
वो गाँठ लगा दी !

कभी–कभी
यों हो जाता है
गीत कहीं कोई गाता है
गूँज किसी
उर में उठती है
तुमने धार वही उमगा दी ।
परिचय की
वो गाँठ लगा दी !

जड़ता है
जीवन की पीड़ा
निषतरंग पाषाणी कीड़ा
तुमने
अनजाने वह पीड़ा
छवि के शर से दूर भगा दी ।
परिचय की
वो गाँठ लगा दी !

गणपति बप्पा मोरिया

—काका हाथरसी

प्रजातंत्र—प्रांगण में भगवन अजब तमाशा होरिया ।
गणपति बप्पा मोरिया !

गांधीजी का चित्र लगाकर, जनगण धन पर डालें डाका,
जाने कब कुरसी छिन जाए, फिर कैसे जीएंगे काका ।
खोलेंगे अगले चुनाव में, भर लें आज तिजोरियां,
गणपति बप्पा मोरिया !

गालों पर छाई है लाली, चेहरा दमक रहा ज्यों दर्पण,
ये सफ़ेद डाकू हैं, हरगिज़ नहीं करेंगे आत्मसमर्पण।
जितने पहरेदार बढ़ रहे, उतनी होती चोरियां,
गणपति बप्पा मोरिया !

सच्चे स्वतंत्रता सेनानी, 'ताम्रपत्र' को चाट रहे हैं,
जाली सर्टिफ़िकेट बनाकर, चमचे चांदी काट रहे हैं ।
कूटनीति की पिचकारी से, खेल रहे हैं होरियां,
गणपति बप्पा मोरिया !

फर्स्ट क्लास 'एम.ए.' रिजेक्ट कर, ले लें थर्ड क्लास बी.ए. को,
साहब नहीं छुएंगे पैसा, दो हज़ार दे दो पी.ए. को ।
जनसेवा का लगा मुखौटा, दाग दनादन गोलियां,
गणपति बप्पा मोरिया !

मार्केटिंग को जायं 'हजूरिन' सजकर सरकारी कारों में,
उनके दर्शन को हो जाती, भीड़ इकट्ठी बाज़ारों में ।
फ़िल्मी हीरोइन—सी लगतीं, ये राष्ट्रीय चकोरियां,
गणपति बप्पा मोरिया !

लड़के लंबे बाल बढ़ाएं, केस कटाती है कन्याएं,
बेटे ब्लाउज़ पहिन रहे हैं, बिटिया जी लुंगी लटकाएं ।
धोखे में पड़ जाते 'काका', को छोरा को छोरियां ?
गणपति बप्पा मोरिया !

इमानी अफ़सर को, नीचे वाले बेईमान बना दें,
लालच का पेट्रोल छिड़क कर, नैतिकता में आग लगा दें ।
तू भी खा और हमें खिला, या बांध बिस्तरा—बोरिया,
गणपति बप्पा मोरिया !

हिन्दी है भारत की बोली

–गोपाल सिंह 'नेपाली'

दो वर्तमान का सत्य सरल,
सुन्दर भविष्य के सपने दो
हिन्दी है भारत की बोली
तो अपने आप पनपने दो ।

यह दुखड़ों का जंजाल नहीं
लाखों मुखड़ों की भाषा है
थी अमर शहीदों की आशा,
अब ज़िन्दों की अभिलाषा है
मेवा है इसकी सेवा में,
नयनों को कभी न झँपने दो ।।

क्यों काट रहे पर पंछी के,
पहुँची न अभी यह गाँवों तक
क्यों रखते हो सीमित इसको
तुम सदियों से प्रस्तावों तक
औरों की भिक्षा से पहले,
तुम इसे सहारे अपने दो ।।

श्रृंगार न होगा भाषण से,
सत्कार न होगा शासन से
यह सरस्वती है जनता की
पूजो उतरो सिंहासन से
तुम इसे शान्ति में खिलने दो,
संघर्ष–काल में तपने दो ।।

जो युग–युग से रह गए अड़े,
मत उन्हीं अक्षरों को काटो
यह जंगली झाड़ न, भाषा है,
मत हाथ–पाँव इसके छाँटो
अपनी झोली से कुछ न लुटे,
औरों को इसमें खपने दो ।।

इसमें मस्ती पंजाबी की,
गुजराती की है कथा मधुर
रसधार देववाणी की है
मंजुल बँगला की व्यथा मधुर
साहित्य फलेगा–फूलेगा,
पहले पीड़ा से कँपने दो ।।

नादान नहीं थे हरिश्चंद्र,
मतिराम नहीं थे बुद्धिहीन
जो कलम चलाकर हिन्दी में
रचना करते थे नित नवीन
इस भाषा में हर 'मीरा' को
मोहन की माला जपने दो ।।

प्रतिभा हो तो कुछ सृष्टि करो,
सदियों की बनी बिगाड़ो मत
कवि सूर बिहारी तुलसी का
यह बिरुवा नरम उखाड़ो मत
भण्डार भरो, जनमन की हर
हलचल पुस्तक में छपने दो ।।

मृदु भावों से हो हृदय भरा
तो गीत कलम से फूटेगा
जिसका सिर सूना–सूना हो,
वह अक्षर पर ही टूटेगा
अधिकार न छीनो मानस का,
वाणी के लिए कलपने दो ।।

बढ़ने दो इसे सदा आगे,
हिन्दी जनमन की गंगा है
यह माध्यम उस स्वाधीन देश का
जिसकी ध्वजा तिरंगा है
हो कान पवित्र इसी सुर में
इसमें ही हृदय तड़पने दो ।।

बेटियाँ

—बंशीधर अग्रवाल

भोर की उजली किरण–सी घर में आएँ बेटियाँ
साँझ की लाली लजीली बन के जाएँ बेटियाँ ।

ये चिरैयों सी फुदकती, द्वार, देहरी, आँगने,
जो मिला चुगकर उसे ही चहचहाएँ बेटियाँ ।

ये सरल मन की किताबें बाँच तो लेना जरा
प्राण में होंगी ध्वनित पावन ऋचाएँ बेटियाँ ।

वार दें सर्वस्व अपना जो कुलों की आन पर
पुत्र कुल दीपक अगर तो हैं शिखाएँ बेटियाँ ।

कीर्ति की उज्ज्वल पताका कम इन्हें मत आँकिये
दो कुलों को तारती ये तारिकाएँ बेटियाँ ।

ये लिए तूफान भी, इनमें अतल गहराइयाँ
आब मोती सी सजाएँ सीपिकाएँ बेटियाँ ।

जिंदगी की धूप तीखी छाँह भी मुमकिन न हो
मानिए सच यों लगें शीतल हवाएँ बेटियाँ ।

निवेदन

यह पत्रिका पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है । इसका एकमात्र उद्देष्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैग़ाम को जन–जन तक पहुंचाना है । इस पत्रिका में हम अपने पाठकों के लिखित और मौखिक निवेदनों को ध्यान में रखते हुए पूर्व में प्रकाशित हो चुकी रचनाओं को भी प्रकाशित करते हैं । ऐसा करते समय हम रचनाकार की अनुमति लेने का भरसक प्रयास करते हैं ।

इस कार्य को प्रसून प्रतिष्ठान द्वारा जनजागरूकता और जनहति की दृष्टि से किया जा रहा है । पत्रिका को शुभेच्छुओं तथा प्रसून–प्रतिष्ठान के सदस्यों में निःशुल्क वितरित किया जाता है ।

यदि आप भी प्रसून प्रतिष्ठान से जुड़ना चाहते हैं और इस पत्रिका में कविताओं के माध्यम से अपना योगदान देना चाहते हैं तो कृपया निम्नलिखित ई–मेल पर अपनी रचनाएं भेजें:

e-mail: shivkumarbilgrami99@gmail.com

महँगाई को रोको

–सर्वेश 'चन्दौसवी'

अर्थव्यवस्था चीख रही है गली–गली ।
मँहगाई को रोको मेरी साँस चली ।।

पेट कमर से ख़ाली लगते जाते हैं ।
आँखों के गड्ढों की बढ़ती गहराई ।।
रूखेपन ने पाँव जमाए चेहरों पर ।
दूर हो गई अधर–अधर से अरुणाई ।।
भ़ोर हुई तो भूख उगी अपराधों की ।
काम पिपासा जाग उठी जब साँझ ढली ।।

निर्वसना हो रही सभ्यता शहरों की ।
गाँव–गाँव में मान बढ़े अभिमानों के ।।
शोकेसों की तरह सजे हैं हथकंडे ।
भाव चढ़े हैं उत्पाती परिधानों के ।।
प्रतिकारों की आग भयानक रूप लिए ।
झुलस रही निर्दोष कि जिसमें कली–कली ।।

दीवारों पर नारे मिलते नित्य नए ।
अख़बारों में सत्य–अहिंसा गूँज रही ।।
जो भी आया पहन मुखौटा सेवा का ।
उसने केवल अपने हित की बात कही ।।
कर्तव्यों का बोध लगे है ज़हरीला ।
अधिकारों की बात लगे हर व़क्त भली ।।

इच्छाओं ने सुरसा–सा आकार किया ।
होड़ लगी है समता और विषमता में ।।
कर्म किए बिन फल के आदी लोग हुए ।
लाते हैं विश्वास न अपनी क्षमता में ।।
संशय की दुर्गन्ध बसी भू–मण्डल में ।
पाती है तक़लीफ़ जतन की श्वांस–नली ।।

संसद

– शिवकुमार 'बिलग्रामी'

उलझे मुद्दे सुलझायेंगे, संसद में सभी उठायेंगे ।
हम लोकतंत्र के राही हैं, हर बिगड़ी बात बनायेंगे ।।

लोकतंत्र का पहिया संसद, यह लोकतंत्र का छाता है,
लोकतंत्र का गीत यहां पर, हर भारतवासी गाता है ।
लोकतंत्र का मंदिर संसद, यह लोकतंत्र की माता है,
लोकतंत्र के इस मंदिर पर, हर कोई शीश झुकाता है ।।

लोकतंत्र के इस मंदिर पर, अब हम भी अलख जगायेंगे ।
हम लोकतंत्र के राही हैं, हर बिगड़ी बात बनायेंगे ।।

जाने कितने दुधिया दाँतों की आस हमारी संसद है,
जाने कितनी सूनी आँखों की आस हमारी संसद है ।
जाने कितने ही लाचारों की आस हमारी संसद है,
जाने कितने बेघरबारों की आस हमारी संसद है ।।

इन सबकी आशाओं पर अब, हम पानी नहीं फिरायेंगे ।
हम लोकतंत्र के राही हैं, हर बिगड़ी बात बनायेंगे ।।

हर ओर खुशी छा जाती है, जब संसद धर्म निभाती है,
किस्मत सोई जग जाती है, जब संसद धर्म निभाती है ।
हर बात लीक पर आती है, जब संसद धर्म निभाती है,
जनता गद्–गद् हो जाती है, जब संसद धर्म निभाती है ।।

धर्म निभाती रहे ये संसद, यह निश्चित हम करवायेंगे ।
हम लोकतंत्र के राही हैं, हर बिगड़ी बात बनायेंगे ।।

संसद में हंगामा करना, कोई अच्छा काम नहीं है,
यह रोज़–रोज़ का अनशन–धरना, कोई अच्छा काम नहीं है ।
अपनी बातों पर ही अड़ना, कोई अच्छा काम नहीं है,
छोटी–छोटी बात झगड़ना, कोई अच्छा काम नहीं है ।।

आपस में मतभेद अगर हैं, मिलबैठ इन्हें निपटायेंगे ।
हम लोकतंत्र के राही हैं, हर बिगड़ी बात बनायेंगे ।।

आँखों में जो सपने बोते, संसद उनका स्वागत करती,
धीरज संयम कभी न खोते, संसद उनका स्वागत करती ।
प्रश्नों पर जो कभी न सोते, संसद उनका स्वागत करती,
प्रश्न नहीं जो उत्तर होते, संसद उनका स्वागत करती ।।

संसद जिनका स्वागत करती, हम उनको तिलक लगायेंगे ।
हम लोकतंत्र के राही हैं, हर बिगड़ी बात बनायेंगे ।।

संसद उन पर भारी पड़ती, जो जनता से कतराते हैं,
संसद उन पर भारी पड़ती, जो वादा नहीं निभाते हैं ।
संसद उन पर भारी पड़ती, जो सत्ता पर इतराते हैं,
संसद उन पर भारी पड़ती, जो मंद कुटिल मुस्काते हैं ।।

मंद कुटिल मुस्काने वालो, हम तुम्हें होश में लायेंगे ।
हम लोकतंत्र के राही हैं, हर बिगड़ी बात बनायेंगे ।।

जनता संजीवन शक्ति है, अब दिल्ली वाली संसद में,
सब राम बाण की शक्ति है, अब दिल्ली वाली संसद में ।
हर कष्ट निवारण युक्ति है, अब दिल्ली वाली संसद में,
हर शोषण से भी मुक्ति है, अब दिल्ली वाली संसद में ।।

दिल्ली वाली संसद को हम, अपना ईमान बनायेंगे ।
हम लोकतंत्र के राही हैं, हर बिगड़ी बात बनायेंगे ।।

x x x x x x

तुम नोट–वोट के गणित–गुणी, हम हैं संसद मंत्रोचारी,
तुम काट–छाँट औ' बांट पढ़े, हम संसद के धुनी पुजारी ।
धर्म–पंथ तुम ज्ञाता–ध्याता, हम हैं संसद के संसारी,
तुम्हें मुबाकर मन्दिर–मस्जिद, हमें हमारी संसद प्यारी ।।

संसद की सत्ता सर्वोपरि, पैगाम यही पहुंचायेंगे ।
हम लोकतंत्र के राही हैं, हर बिगड़ी बात बनायेंगे ।।

तुझे कुछ और भी दूँ

-रामवतार त्यागी

मन समर्पित तन समर्पित और यह जीवन समर्पित
चाहता हूँ देश की धरती तुझे कुछ और भी दूँ

देश तुझको देखकर यह बोध पाया
और मेरे बोध की कोई वजह है
स्वर्ग केवल देवताओं का नहीं है
दानवों की भी यहाँ अपनी जगह है
स्वप्न अर्पित प्रश्न अर्पित आयु का क्षण–क्षण समर्पित
चाहता हूँ देश की धरती तुझे कुछ और भी दूँ

रंग इतने रूप इतने यह विविधता
यह असंभव एक या दो तूलियों से
लग रहा है देश ने तुझको पुकारा
मन बरौनी और बीसों उँगलियों से
मान अर्पित गान अर्पित रक्त का कण–कण समर्पित
चाहता हूँ देश की धरती तुझे कुछ और भी दूँ

सुत कितने पैदा किए जो तृण भी नहीं थे
और वे भी जो पहाड़ों से बड़े थे
किंतु तेरे मान का जब वक्त आया
पर्वतों के साथ तिनके भी लड़े थे
ये सुमन लो, ये चमन लो, नीड़ का तृण–तृण समर्पित
चाहता हूँ देश की धरती तुझे कुछ और भी दूँ

हर संगठन अलगाव बोने के लिए
दशरथ नमन युवराज होने के लिए
ये संस्थाएं धर्म या साहित्य की
बस काम आतीं दाग धोने के लिए

अमित कुलश्रेष्ठ

हुआ क्या रात भर

—डॉ0 मोहन अवस्थी

हुआ क्या रात भर कोई अगर सोया नहीं है
यही क्या कम कि उसने दिन अभी खोया नही है

उन्हीं को नींद की चाहत कि सपने देखते जो
कंटीला कंकड़ों का पथ कभी टोया नहीं है
हुआ क्या रात भर कोई अगर सोया नहीं है

गया है रंग बदल, कि गंध में संकेत भी हैं
कि तुमने आँसुओं से घाव वह धोया नहीं है
यही क्या कम कि उसने दिन अभी खोया नहीं है

उदासी क्यों अभी तक, और रूखापन वही क्यों
तुम्हारा मन किसी के स्नेह ने मोया नहीं है
हुआ क्या रात भर कोई अगर सोया नहीं है

सहूँ कैसे हजारों रंग चेहरे पर चढ़े हैं
कि मैंने बोझ इतना तो कभी ढोया नहीं है
यही क्या कम कि उसने दिन अभी खोया नहीं है

न तो मंडित, न है उन्नत, न जीवन में चमक आई
हृदय ने क्षण—कणों का हार संजोया नहीं है
हुआ क्या रात भर कोई अगर सोया नहीं है

भयंकर भीड़ जिसमें हद नहीं है, चिल्लपों की
यहाँ हर एक है कुछ इस तरह गोया नहीं है
यही क्या कम कि उसने दिन अभी खोया नहीं है

सुखी उसको समझिये दुःख को पहचानता जो
दुखी वह जो किसी की याद में रोया नहीं है
हुआ क्या रात भर कोई अगर सोया नहीं है

चिठिया बाँच रहा चंदरमा

–दिवाकर वर्मा

चिठिया
बाँच रहा चंदरमा
शरद जुन्हैया की ।

जोग लिखि श्रीपत्री घर में
कुशल–क्षेम भारी,
आँगन के बूढे पीपल पर
चली आज आरी,
रामजनी कर रहीं चिरौरी
किशन–कन्हैया की ।

चौक–सातिया, बरहा–बाँगन
हो गये असगुनिया,
नहियर–सासुर खुसर–फुसर है
आशंकित मुनियाँ,
बाप–मताई जाप रहे कर
देवी मैया की ।

गली–मोड़ खुल गयीं कलारीं,
झूमें गलियारे,
ब्याज–त्याज में बिके खेत
हल बैठे मन मारे,
कोरट सुरसा बनी
आस अब राम–रमैया की ।

पिअराये भुट्टे, इतराये
मकई के दाने.....
हाट–बाट में लुटी फसल,
कुछ मण्डी कुछ थाने,
साँसें उखड़ीं, उखड़ गयी हैं
कील पन्हैया की ।

शेष सभी कुशलात
देश–परदेश दीन–दुनिया,
लिये आँकड़ों की मशाल
यह बता रहे हैं गुनिया,
जगमग रोज दिवाली होती
जिनकी गली अथैया की ।

तेरी चाहत तेरी यादें,
तेरी खुशबू लाए हैं
बरसों बाद हमारी छत पर
झूम के बादल आये हैं

विद्याभूषण मिश्र

योगफल

—हरे राम समीप

मेरे गाँव में
अब भी
सब कुछ खत्म नहीं हुआ है।

प्रेम और उपकार का भाव
बरसों से
आम और नीम के पेड़ों की तरह
आज भी हरा है यहाँ।

यहाँ
दिलों के भीतर की आग
गुरसी की राख के भीतर
दबे अंगारे की तरह
अब भी ज़िंदा है
इसीलिए जब तब
प्रेम की चिनगारियों की खबरें
आ ही जाती हैं
गाँव से ।

यहाँ एक घर का दुख
आज भी
पूरे गाँव की आँखें भिगोता है
और एक की खुशी में
बसंत हो जाता है
पूरा गाँव ।

लोग
अपने हाथ का काम छोड़कर
दौड़े आते हैं
गाँव के अतिथि से मिलने
और सहआतिथ्य के बीच
अतिथि भूल ही जाता है
कि आखिर वह
किसके घर आया था
यहाँ पर।

यदि
सारी दुनिया के लोग आ जाएँ
फिर भी
जगह की कमी नहीं पड़ेगी
मेरे गाँव में।

अब भी
दूसरों की भलाई में
लगा रहना चाहता है
यहाँ का
हर आदमी
दूसरे की मुसीबत
अपने सर लेने को
तत्पर रहते हैं
गाँव के लोग।

अभी भी
गाँव के लोग
किसी डर के बीच
एकजुट रहना जानते हैं।

मेरा गाँव
उजाले की एक खिड़की है
जहाँ से दिखता है
दुनिया का बेहतरीन नज़ारा
एकदम साफ़—साफ़।

मेरा गाँव
योगफल है
सभी मानवीय विश्वासों का ।

हाथ की ये लकीरें

—डॉ0 विष्णु सक्सेना

हाथ की ये लकीरें, लकीरें नहीं
जख्म की सूचियाँ हैं, इन्हें मत पढ़ो
दिल से उठते धुएँ को धुआँ मत कहो,
दर्द की आँधियाँ है, इन्हें मत पढ़ो ।

मुसकराई जो तुम स्वप्न आने लगे,
खिलखिलाई तो दिन भी सुहाने लगे,
जब तुम्हारी नजर ने हमें छू लिया,
अपनी आँखों के आँसू सुखाने लगे,
अब न आँसू न सपने न कोई चमक
खोखली सीपियाँ हैं, इन्हें मत पढ़ो ।
हाथ की.....

मछलियाँ थीं मगर जाल डाले नहीं
पास कंकर बहुत पर उछाले नहीं,
तुमको सीमाएँ अच्छी लगीं इसलिए,
पाँव चादर से बाहर निकाले नहीं ।
पृष्ठ कोरे हैं तो क्या हुआ फेंक दो
अनलिखी चिट्ठियाँ हैं, इन्हें मत पढ़ो ।
हाथ की.....

उम्र–भर हाथ सबको दिखाते रहे,
और निराशा में आशा बँधाते रहे,
जब से देखा तुम्हें फूल से प्यार है,
हम मुंडेरों पे गमले सजाते रहे,
चुभ रहे जो तुम्हें तेज काँटे नहीं,
ये मेरी उँगलियाँ हैं, इन्हें मत पढ़ो ।
हाथ की.....

मन बहकने लगा और घबरा गए,
भूख इतनी लगी धूप भी खा गए
जिन्दगी भर बबूलों में भटका किए,
लौटकर अब उसूलों के घर आ गए,
अब पहाड़े सही याद कर लीजिए,
जो गलत गिनतियाँ हैं, उन्हें मत पढ़ो ।
हाथ की ....

नया उजाला देगी हिन्दी

प्रो0 आदेश हरिशंकर (कनाडा से)

तम–जाला हर लेगी हिन्दी, नया उजाला देगी हिन्दी ।
विश्व–ग्राम में सबल सूत्र बन, सौख्य निराला देगी हिन्दी ।
द्वीप–द्वीप हर महाद्वीप में, हम हिन्दी के दीप जलाएँ ।

जीवन को सक्षम कर देगी, वर्तमान मधुरिम कर देगी ।
एक सुखद अतीत दे हमको, भविष्य भी स्वर्णिम कर देगी ।
नगर–नगर घर ग्राम–ग्राम में, हम हिन्दी का अलख जगाएँ ।।

हीरक दें, मौक्तिक कंचन दें, शिक्षा दें सुखमय जीवन दें ।
किन्तु, प्रथम कर्तव्य हमारा, संतति को संस्कृति का धन दें ।
करें नहीं मिथ्या समझौता, सच्चे भारतीय कहलाएँ ।।

वैमनस्य का भूत भगाएँ, ईर्ष्या–द्वेष अपूत मिटाएँ ।
नैतिक मूल्यों की रक्षा कर, सच्चे संस्कृति–दूत कहायें ।
आज देहरी पर हर उर की, पावन प्रेम–प्रदीप सजाएँ ।।

जहाँ रहें, वह देश हमारा, उसका हित उद्देश्य हमारा ।
किन्तु मूल से जुड़े रहें हम, बहे अनवरत जीवन धारा ।
सच्चे श्रेष्ठ नागरिक बनकर, हम दोहरा दायित्व निभाएँ ।।

दूर रहे हर दुख की छाया, बन्धु निरोगी हो हर काया ।
सदन–सदन नित आलोकित हो, हृदय–अयन में प्यार समाया ।
ले सर्वात्मभाव अंतर में, पहले मन का तिमिर मिटाएँ ।।

युद्ध के विरूद्ध हूँ मैं

डॉ0 अमिता तिवारी (यू एस ए से)

(एक)

युद्ध में न हारा देश हारता है
युद्ध में न जीता देश जीतता है
युद्ध तो केवल शहीदों के
घरवालों पर बीतता है

(दो)

जिन–जिन पर युद्ध बीत गया
हरा भरा घर रीत गया
क्या फरक पड़ता अब उनको
कौन देश अब हार गया
कौन देश अब जीत गया

(तीन)

सीमा पर युद्ध न हारे जाते हैं
न सीमा के लिए जीते जाते हैं
राजधानी में जो घोषणाएँ चीखते हैं
वो तो केवल
शहीदों की चिताओं पर लगने वाले मेलों में
जाते हैं

(चार)

कोई युद्ध अचानक सीमा पर पैदा नहीं हो जाता
उसके पीछे एक पूरा तंत्र होता है
हर किसी को कुछ न कुछ मिल जाता है
बस शहीदों के साथ ही षडयंत्र होता है

दोनो ही पक्ष आये हैं
तैयारियों के साथ
हम गरदनों के साथ हैं
वो आरियों के साथ

आनंद शर्मा

ज़िन्दगी छलने लगी

रेखा राजवंशी (आस्ट्रेलिया से)

शाम जब ढलने लगी
कंगारुओं के देश में
पीर सी पलने लगी
कंगारुओं के देश में

याद फिर आने लगे
कुछ दोस्त अपने वतन के
आग सी जलने लगी
कंगारुओं के देश में

फिर लगा मन सोचने
कि क्या मिला क्या न मिला
कुछ कमी खलने लगी
कंगारुओं के देश में

दूर तक पसरी हुई थीं
अपनी जो परछाइयां
हाथ फिर मलने लगीं
कंगारुओं के देश में

वक्त पंछी सा न जाने
कब, कहां उड़ता गया
जिन्दगी छलने लगी
कंगारुओं के देश में

पंद्रह अगस्त

अमिताभ मित्रा (दक्षिण अफ्रीका से)

कभी हम याद करते हैं पंद्रह अगस्त को
पाँच साल की उम्र में तिरंगा खरीदने को
आतुर हो जाता था यह दिल
तिरंगे वाला चिल्लाता था
पंद्रह अगस्त के तिरंगे ले लो
दस पैसे में आज़ादी को
अपने घर में ले लो
दिवाली के पटाखों की तरह
पंद्रह अगस्त के तिरंगों की कीमत
हर साल बढ़ती गई
दस रुपए की पटाखे और दस रुपए के तिरंगों में
अब न आता था मजा
खुशियों की कीमत दे रही थी हमें वो सज़ा
पिताजी ने एक दिन कह ही दिया
बेटे न खरीदो तिरंगा अब
साल बीत गए
बड़े ज़रूर हो गए
पर आज़ादी के शिकंजों में हम
अब भी ग्रसित रहे
दिवाली के पटाखे
आज भी हम ख़रीदते हैं बड़े चाव से
पर बच्चों को ख़रीद कर नहीं देते हैं तिरंगा
क्योंकि
न आता है तिरंगे वाला
न आज़ादी को अब हम घर ला सकते हैं ।

अर्थ शब्दों में नहीं तुम्हारे भीतर है

मोहन राणा (ब्रिटेन से)

मैं बारिश में शब्दों को सुखाता हूँ
और एक दिन उनकी सफ़ेदी ही बचती है
जगमगाता है बरामदा शून्यता से
फिर मैं उन्हें भीतर ले आता हूँ

वे गिरे हुए छिटके हुए क़तरे जीवन के
उन्हें चुन जोड़ बनाता कोई अनुभव
जिसका कोई अर्थ नहीं बनता
बिना कोई कारण पतझर उनमें प्रकट होता
बाग़ की सीमाओं से टकराता
कोई बरसता बादल
दो किनारों को रोकता कोई पुल उसमें
आता जैसे कुछ कहने
अक्सर इस रास्ते पर कम ही लोग दिखते हैं

यह किसी नक़्शे में नहीं है
कहीं जाने के लिए नहीं यह रास्ता,
बस जैसे चलते–चलते कुछ उठा कर साथ लेते ही
बन पड़ती कोई दिशा,
जैसे गिरे हुए पत्ते को उठा कर
कि उसके गिरने से जनमता कोई बीज कहीं !

यह कौन हृदय में आकर
कोमलता को मलता है
छल–छल–छल छलक–छलक कर
नयनों से बह चलता है

कुँअर बेचैन

पासवर्ड

गुलशन गंगाधर सिंह सुखलाल (मॉरीशस से)

सुबह जब जागा
तो मोबाईल को चार्ज पर से निकाला और
ऑन करने के लिए कोड डाला
तैयार होकर ऑफिस पहुँचा
वहाँ दरवाजे का कोड डालकर लाल बत्ती हरी की
फिर कंप्यूटर ने माँगा अपना पासवर्ड
और जब पैसे निकालने ए.टी.एम. तक पहुँचे
तो एक और कोड

दिन भर के कामों को अनलॉक करता हुआ
जब शाम को घर पहुँचा
तो सीधे बिस्तर पर कैश हो गया
पड़ोसी दोस्त और रिश्तेदार तो एंटर कर नहीं पाए
बीबी, बच्चों, माता–पिता को भी मेरी दुनिया में
एक्सैस मिला नहीं.....

ज़िदगी में बेमानी हो चली
कुछ भावनाओं, नर्मियों को
दिल के जिस फोलडर में रखा था
उसका पासवर्ड....
मैं कहीं भूल गया ।

सुख में दुनिया लगी सगी है
दुःख में तनिक न प्रेम पगी है
खुली आँख तो रहो सुरक्षित
बंद आँख तो ठगा–ठगी है

डॉ0 जगदीश गुप्त

एक ज़िंदगी, तीन किरदार

डॉ0 सुरेन्द्र भूटानी (पोलैंड से)

इस अफ़साने के तीन किरदार हैं
मैं, तू और सच ।
मैं भी सच्चा था
जब मेरे इश्क में मुब्तिला था
तू भी सच्ची थी
जब से तूने तर्के–वफ़ा का फ़ैसला किया
और सच ये है
के हम दोनों खुदगर्ज निकले
मैं तेरी रूह की गहराई को छू न सका
और तू मेरे पिंदार की रूह बन न सकी
अपनी–अपनी जगह सब ईमानदार हैं
इस अफ़साने के तीन किरदार हैं

मैं चाहकर भी उस बुलंदी तक न आया
तू हर हक़ीक़त को समझ बैठी है साया
हक़ीक़त और गफ़लत में फ़र्क कितना है ।
ख़्वाबों में जीना, तसव्वुर में पीना
और आख़िरश, जब दर्दे–हस्ती का ज़हर
लबों पे आया
लुट गया उम्र भर के सब्र का सरमाया
तड़पने दे दिल को, सब बेदार हैं
इस अफ़साने के तीन किरदार हैं ।

तुम जब तक साथ सफर में थे
मंज़िल कदमों तक खुद आई
अब मंज़िल तक ले जाती है
मुझको मेरी ये तन्हाई

आचार्य संजीव वर्मा 'सलिल'

व्यर्थ नहीं हूँ मैं

– कविता किरण

व्यर्थ नहीं हूँ मैं !
जो तुम सिद्ध करने में लगे हो
बल्कि मेरे कारण ही हो तुम अर्थवान
अन्यथा अनर्थ का पर्यायवाची होकर रह जाते तुम ।

मैं स्त्री हूँ !
सहती हूँ
तभी तो तुम कर पाते हो गर्व अपने पुरूष होने पर
मैं झुकती हूँ !
तभी तो ऊंचा उठ पाता है
तुम्हारे अहंकार का आकाश ।

मैं सिसकती हूँ !
तभी तुम कर पाते हो खुलकर अट्हास
हूँ व्यवस्थित मैं
इसलिए तुम रहते हो अस्त व्यस्त ।
मैं मर्यादित हूँ
इसीलिए तुम लाँघ जाते हो सारी सीमायें ।
स्त्री हूँ मैं !
हो सकती हूँ पुरूष
पर नहीं होती
रहती हूँ स्त्री इसलिए
ताकि जीवित रहे तुम्हारा पुरूष;
मेरी नम्रता से ही पलता है तुम्हारा पौरुष।

मैं समर्पित हूँ !
इसीलिए हूँ उपेक्षित, तिरस्कृत ।
त्यागती हूँ अपना स्वाभिमान
ताकि आहत न हो तुम्हारा अभिमान
जीती हूँ असुरक्षा में
ताकि सुरक्षित रह सके
तुम्हारा दंभ ।

सुनो !
व्यर्थ नहीं हूँ मैं !
जो तुम सिद्ध करने में लगे हो
बल्कि मेरे कारण ही हो तुम अर्थवान
अन्यथा अनर्थ का पर्यायवाची होकर रह जाते तुम ।

काल नहीं सूना हो जाए

–निर्मला जोशी

एक नशा कर बैठे हैं हम
और न कुछ कर पाएँगे ।
जिन्हें रक्त से सींच रहे हैं
उन्हें छोड़ क्या गाएँगें ।

प्यास नहीं आकुल अधरों पर
हमने बंशी धारी है ।
बने–ठने इस मेले में तो
बाकी सभी उधारी है ।
तुम तो मरघट पर रुक लोगे,
हम अनंत तक जाएँगें ।

हमको बाँध सका कोई तो
बाँधा केवल छंदों ने ।
नकली हस्ताक्षर ही माना
कुछ आँखों के अंधों ने ।
विषधर तो विष ही उगलेंगे
अमृत हम छलकाएँगे ।

हम ऐसे सौदागर हैं जो
छोड़ तराजू चलते हैं ।
पर्वत से हैं टकरा जाते
पर आँसू से गलते हैं ।
यों गल–गल कर मेघों से हम
गीतों में ढल जाएँगे ।

यह संकल्प न पूरा होता,
यदि तुम साहस नहीं बढ़ातीं
सारा हवन अधूरा होता
यदि तुम समिधा नहीं जुटातीं

कृष्ण बिहारी

राजकीय प्रवास

—अनामिका

वह होटल के कमरे में दाखिल हुई
अपने अकेलेपन से उसने
बड़ी गर्मजोशी से हाथ मिलाया ।

कमरे में अंधेरा था
घुप्प अंधेरा था कुएँ का,
उसके भीतर भी....

सारी दीवारें टटोली अंधेरे में
लेकिन 'स्विच' कहीं नहीं था
पूरा खुला था दरवाजा
बरामदे की रोशनी से ही काम चल रहा था
सामने से गुजरा जो 'बेयरा' तो
आर्तभाव से उसे देखा
उसने उलझन समझी और
बाहर खड़े–खड़े
दरवाजा बंद कर दिया ।

जैसे ही दरवाजा बंद हुआ
बल्बों में रोशनी के खिल गए सहस्रदल कमल
''भला बंद होने से रोशनी का क्या है
रिश्ता ?'' उसने सोचा

डनलप पर लेटी
चटाई चुभी घर की, अंदर कहीं–रीढ़ के भीतर
तो क्या एक राजकुमारी ही होती है हर औरत
सात गलीचों के भीतर भी
उसको चुभ जाता है
कोई मटरदाना आदिम स्मृतियों का

पढ़ने को बहुत कुछ धरा था
पर उसने बांची टेलीफोन तालिका
और जानना चाहा
अंतर्राष्ट्रीय दूरभाष का ठीक–ठीक खर्चा ।

फिर, अपनी सब डॉलरें खर्च करके
उसने किए तीन अलग–अलग कॉल ।

सबसे पहले अपने बच्चे से कहा
हैलो–हैलो, बेटे!
पैकिंग के वक्त...
सूटकेस में ही तुम ऊंघ गए थे कैसे...
सबसे ज्यादा याद आ रही है तुम्हारी
तुम हो मेरे सबसे प्यारे !''

अंतिम दो पंक्तियाँ अलग–अलग उसने कहीं
आफिस में खिन्न बैठे अंट–शंट सोचते
अपने प्रिय से
फिर, चौके में चिंतित, बर्तन खटकाती
अपनी माँ से ।

...अब उसकी हुई गिरफ्तारी
पेशी हुई खुदा के सामने
तीन–तीन लोगों से कैसे यह कहा
''सबसे ज्यादा तुम हो प्यारे!''
यह तो सरासर है धोखा
सबसे ज्यादा माने सबसे ज्यादा!

लेकिन, खुदा ने कलम रख दी
और कहाँ
''औरत है, उसने यह ग़लत नहीं कहा !''

स्वाभिमानिनी

—अंजना संधीर

स्वाभिमानिनी
उसने कहा
द्रौपदी शरीर से स्त्री
लेकिन मन से पुरूष है
इसीलिए पाँच–पाँच पुरूषों के साथ
निष्ठापूर्ण निर्वाह किया ।

नरसंहार में भी विचलित नहीं हुई
खून से सींचकर अपने बाल
तृप्ति पाई
फ़िर भूल गई इस राक्षसी अत्याचार को भी
क्या सचमुच?

मन से पुरूष स्त्रियों का यही हाल होता है
हर जगह अपमानित होना होता है
हमेशा निशाना बनना होता है मन से स्त्री बने पुरूष को भी

क्यों नहीं स्वीकारते सब ?
सत्य ये है कि पुरूष और प्रकृति का भेद स्वीकार्य है
पुरूष समान स्त्री आकर्षित करती है
अच्छी लगती है लेकिन स्वीकार्य नहीं
क्योंकि आदमी का बौनापन जाहिर हो जाता है
मजबूत स्वाभिमानिनी स्त्री के सामने ।

इसीलिए.....
पहले उसका स्वाभिमान तोड़ा जाता है
फ़िर स्त्रीत्व... फिर कुछ और...
स्वाभिमानिनी, कौन सहेगा तुम्हारा स्वाभिमान !

सत्यमेव जयते

—इंदिरामोहन

राष्ट्र ध्वजा के तीन रंग
भारत गरिमा कहते
सत्यमेव जयते, सत्यमेव जयते

गंग यमुन का उज्ज्वल पानी
आर्यभूमि की कहे कहानी
त्याग तपस्या की सलिला में
कर्म पुण्य बहते
सत्यमेव जयते

आत्मज्ञान से दीप्त जवानी
प्राण शक्ति की अमर निशानी
मानवता की बलिवेदी पर
हँस–हँस सब सहते
सत्यमेव जयते

शाश्वत संस्कृति के अभिमानी
लक्ष्य हेतु जीवन बलिदानी
हिमगिरि से ऊंचे विचार हैं
मौन सकल रहते
सत्यमेव जयते

मर्यादित जीवन संग्रामी
सत्य अहिंसा के अनुगामी
राष्ट्र एक हम भाई–भाई
मिलजुल कर रहते
सत्यमेव जयते

जननी जन्मभूमि जय तेरी
कंठ–कंठ कहते
सत्यमेव जयते

यमदूत

– नीरज त्रिपाठी

कल रात को अचानक
दो चेहरे दिखे भयानक
मैंने पूछा क्या आप भूत हैं
जवाब मिला हम यमदूत हैं
एक पहने था जीन्स एक पहने था जांघिया
काले काले मोटे मोटे वो लगते थे माफिया
पहले तो मैं सकपकाया
फिर अपना साहस जुटाया
मैंने पूछा, आपको मुझसे क्या है काम पड़ा
वो बोले, चलो बेटा भर गया है तुम्हारे पाप का घड़ा
मैंने थोड़ा मक्खन लगाया
पास पड़ी चेकबुक को उठाया
पूछा कितने का चेक काट दूं
क्या सारी रकम आप दोनों में बांट दूं
वो बोले मिस्टर हम यमदूत हैं नेता नहीं
मैं बोला, ये यमलोक नहीं मेरी धरती माई है
और ये पैसा घूस नहीं, आपके बच्चों की मिठाई है
ये सुनते ही उनका पारा चढ़ गया
मेरा तो सारा सिस्टम बिगड़ गया
उन्होंने फेंक दिया मेरे गले में एक फन्दा
तब मैंने चेक किया कि मैं मर गया हूं या हूं जिन्दा
मैंने अपने आपको मरा पाया
घड़ी के अलार्म ने तब मुझे जगाया
ये तो था एक सपना तो मैं बच गया
उठकर नहाने गया तो मैं सिहर गया
मैं अपनी जांघिया को
यमदूत की जांघिया समझकर डर गया ।

सपने का घर

–विकासानंद

देखता हूँ सपना ऐसे मकान का
पीठ पर पहाड़ हो मानिंद बाप के
पास बहती इक नदी
जा कूदूँ जिसमें धप्प से
मां की गोद की तरह।
छप्पर पे छाया पेड़
लहरे जिसकी शाख–शाख
करूँ चिरौरी जिसकी – ऐ भाई ! पकड़ तो मेरा हाथ
चढ़कर बैठूँ ऊपर पूरी दुपहरिया ।
बागीचा दूब का, मोगरे की झाड़ियाँ
दो जंगली खरगोश, कुछ एक गिलहरियाँ
(हो सके तो इक मोर भी, पकडूँगा नहीं कभी जिसे, कसम से!)
आँगन में खिले धूप, बाड़े में हो हवा।
सौंधी सिकी एक रोटी संग
चटनी पुदीने की जरा सी इमली डालकर।
तो सोऊँ लंबी तानकर
बिस्तर भर हो ज़मीं
लोरी सुनाए रात
टिहुककर जगाए सूरज

.....

और जिंदगी कट जाए किसी ख़्वाब की तरह !

दो कविताएं

—ऋषभदेव शर्मा

एक

पेट भरा हो तो सूझे है, ताज़ा रोटी बासी रोटी
पापड़ ही पकवान लगे है, भूख न जाने सूखी रोटी
ऐंठी आँतों की नैतिकता, मोटे सेठों की नैतिकता
भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ हैं, रूखी रोटी चुपड़ी रोटी
घसियारों की एस बस्ती में, आदमखोरों की हस्ती में
रोज़ खून के भाव बिके हैं, काली रोटी गोरी रोटी
आधा तन फुँकता है मिल में, आधा नीचे है महफ़िल में
सब कुछ बेच कमा पाए हैं, टुकड़ा रोटी आधी रोटी
शासन अनुशासन सिखलाता, पर मालिक चाबुक दिखलाता
संसद बाँट–बाँट खाए है, नेता रोटी मंत्री रोटी
लोकतंत्र का वो दूल्हा है, जिसका ये फूटा चूल्हा है
तपे तवे से हाथ पके हैं, छाला रोटी छैनी रोटी
सावधान ! ये हाथ उठे हैं, भाला रोटी बरछी रोटी

दो

धर्म, भाषा, जाति, दल का, आजकल आतंक है
इन सभी का दुर्ग टूटे, एक ऐसा युद्ध हो
भर दिया भोले मनुज के, कंठ में जिसने ज़हर
वह प्रचारक मंच टूटे, एक ऐसा युद्ध हो
नागरिक के हाथ में जो, द्वेश की तलवार दे
शब्द का वह कोश टूटे, एक ऐसा युद्ध हो
रंग के या नस्ल के हित, जो कि नक़्शा नोच दे
क्रूर वह नाखून टूटे, एक ऐसा युद्ध हो
भीष्म–द्रोणाचार्य सारे, रोटियों पर बिक रहे
अर्जुनों का मोह टूटे, एक ऐसा युद्ध हो ।

देवब्रत जोशी की कविताएं

रजधानी की धज

भूपालों के
नगर गए हम
हमने सुने राग दरबारी ।।

जाजम पर
हमको बैठाया
सारा कर्ज़ माफ़ फ़रमाया
फिर वे लगे
नाचने खुद ही –
अपनी छवि होते बलिहारी ।

देखे सत्ता के गलियारे
कागज के मुख होते कारे
जन तिनके–सा
उड़ता दीखा
रजधानी की धज है न्यारी ।

कुंभनदास

कुंभनदास
गए रजधानी ।

खूब लिखा
और नाम कमाया
दाम नहीं जीवन में पाया
राजाजी ने
अब बुलवाया
भारी मन, जाने की ठानी

कुंभन पहुँचे
पैयाँ–पैयाँ
देखा चोखा रूप–रुपैया
लेकिन कहाँ
आ गए भैया
यहाँ नहीं मिलता गुड़–धानी

'धत्तेरे की'
कह कर लौटे
लोग यहाँ के सिक्के खोटे
सब के सब हैं
बिन पेंदे के लोटे
जमना है पर खारा पानी

एक तुम्हारा होना
क्या से क्या कर देता है
बेजुबान छत, दीवारों को
घर कर देता है

मदन मोहन अरविंद

अश्क से भीगी निगाहें

—डॉ0 त्रिमोहन 'तरल'

अश्क से भीगी निगाहें
राज़ दिल का खोलती हैं
सुन सके कोई इन्हें तो
चुप्पियाँ भी बोलती हैं

सुबकियों में क़ैद होती
दर्द की पूरी कहानी
जिस तरह से सीपियों में
बंद मोती की जवानी
ख़ास बूदों के लिए ही
सीपियाँ मुंह खोलती हैं
सुन सके कोई इन्हें तो
चुप्पियाँ भी बोलती हैं

रवि–किरन की छुअन भर से
भोर की कलियाँ चटकती
थकन दिन की रात के
आगोश में चुपके सिमटती
गीत सुनकर के हवा का
पत्तियाँ ज्यों डोलती हैं
सुन सके कोई इन्हें तो
चुप्पियाँ भी बोलती हैं

दर्प की भौहें तनीं जब
आसमाँ से हेरतीं हैं
तब झुकीं पलकें विनय कीं
दर्प का मन फेरती हैं
आसमानों को ज़मीनी
ताक़तें ही तौलतीं हैं
सुन सके कोई इन्हें तो
चुप्पियाँ भी बोलती हैं

कालिखें इन कारखानों
की नहीं आवाज़ करतीं
नालियाँ भी चुपके–चुपके
खेल क्या–क्या कर गुज़रतीं
वे हवाओं में ज़हर तो
ये नदी में घोलती हैं
सुन सके कोई इन्हें तो
चुप्पियां भी बोलती हैं !

ज़िन्दगी के जश्न की,
त्योहार की बातें सुना
छोड़ रंजिश की कहानी
प्यार की बातें सुना

रामदरश मिश्र

जल दोहे

—इन्द्र प्रसाद 'अकेला'

सब जल की रक्षा करें, वरना होगा लोप
जल बरबादी से सुजन, सहना पड़े प्रकोप

जल जग से मिट जाएगा, प्यासा तू रह जाय
रोज वनस्पति मर रही, चैन कहाँ से पाय

धरती की ताकत घटी, घटा भूमि का नीर
अब मानव ने फोड़ ली, खुद अपनी त़कदीर

रहन–सहन, पोषण भरण, पानी की है देन
मानव जल दूषित करे, फिर फिरता बेचैन

विद्यालय में दीजिए, जल का ज्ञान महान
सबको यह सिखलाइए, रखो सुजल का ध्यान

जनता में पैदा करो, नई चेतना आज
पीने को पानी मिले, गूँजे यह आवाज

विद्यालय में आज से, ऐसा करो प्रचार
सबसे पहले नीर है, जीवन का आधार

जो भी हम भोजन करें, पानी उसे पचाय
बिन पानी जीवन चले, ऐसा नहीं उपाय

श्रीकांत वर्मा

(जन्म 18 सितम्बर 1931 - निधन 1986)

घुड़सवार घोड़े पर नहीं,
हवा पर सवार है-
हवा न कुछ खाती है,
न कुछ पीती है, न कुछ माँगती है।

हवा घोड़े से अधिक तेज चलती है,
हवा कहीं नहीं रुकती,
हवा बीच-बीच में
घोड़े की तरह हिनहिनाती है।

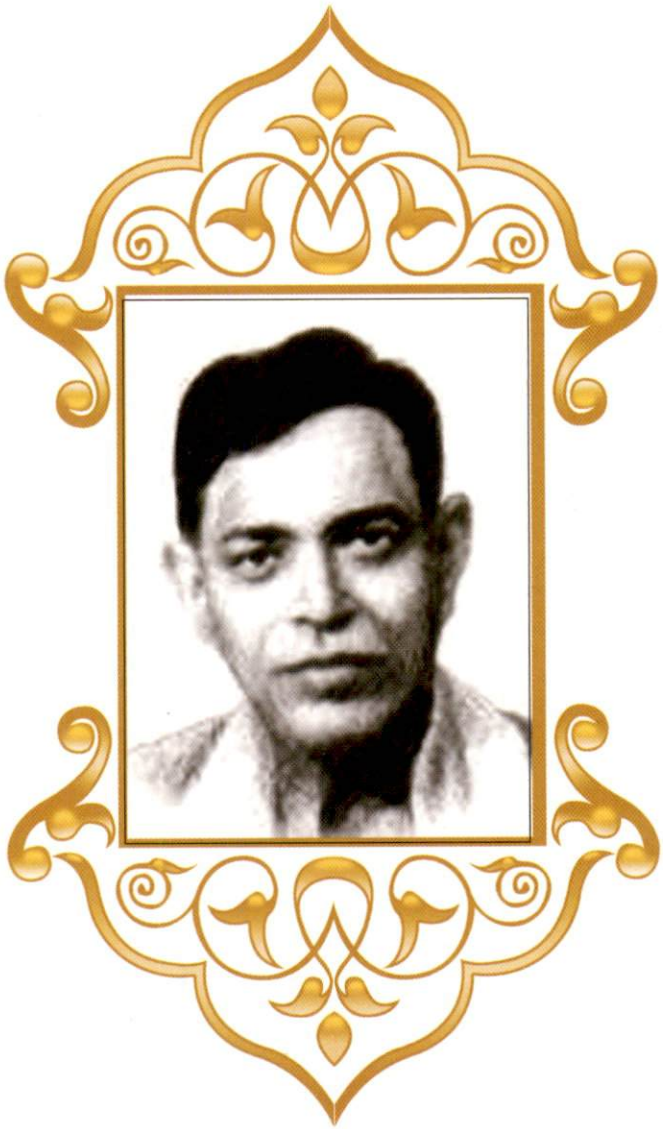

रामधारी सिंह दिनकर

जन्म - 23 सितम्बर, 1908 : निधन - 24 अप्रैल, 1974

आजादी तो मिल गयी, मगर, यह गौरव कहा जुगाएगा ?

मरभुखे ! इसे घबराहट में तू बेच न तो खा जाएगा ?

आजादी रोटी नहीं, मगर, दोनो में कोई वैर नही,

पर कहीं भूख बेताब हुई तो आजादी की खैर नही ।